International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 495-496

प्रेमचन्द की कहानियों मे धार्मिक चेतना

पूनम
सहायक प्रवक्ता, कन्या महाविद्यालय, खरखौदा, सोनीपत, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

प्रत्येक युग की सभ्यता और संस्कृति के विकास में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। धर्म का आरम्भ इतना प्राचीन है जितना कि स्वयं मानव और उसकी चेतना। कोई भी आदिकालीन समाज ऐसा नहीं मिलता जो धर्म विहीन रहा हो। धर्म विश्वव्यापी तत्त्व है। धर्म शब्द संस्कृत की 'धृञ' धातु मे 'मन' प्रत्यय के योग से बना है। इसका अर्थ है धारण शक्ति। जो महत्त्वपूर्ण है जिसे धारण करना सबके हित में है और जो समाज का मंगलविधायक है उसे ही धर्म कहा गया है। धर्म सम्पूर्ण जगत को धारण करता है इसलिए इसका नाम धर्म है। हमारे धार्मिक ग्रन्थ 'मनुस्मृति' के अनुसार–

''धृतिः क्षमा दमोडस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यंक्रमोधो दशकं धर्मलक्षमणम्।।''[1]

अर्थात धैर्य धारण करना, क्षमा करना या सहनशीलता,आत्म नियंत्रण करना, चोरी न करना, पवित्रता अपनाना, इन्द्रियों का दमन, बुद्धि, विद्या, सत्य बोलना तथा क्रोध न करना ये धर्म के दस लक्षण माने गये है। इन विशेषताओं को धारण करना ही वस्तुतः धर्म कहलाता है। जैन मत मे आत्मा के सद्गुणों के विकास को धर्म कहा गया है। चार्वाक मत के अनुसार वे कर्म ही धर्म हैं जिनसे अपनी कामनाओं की पूर्ति होती है।

धर्म शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों मे होता है। डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने वेद, उपनिशद, पूर्व मीमांसा, वैशेषिक सूत्र आदि मे प्राप्त धर्म के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए धर्म की परिभाषा इस प्रकार दी है –''यह चारों वर्णों और चारों आश्रमों के सदस्य द्वारा जीवन के चार प्रयोजनों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के संबंध मे पालन करने योग्य मनुष्य का समूचा कर्त्तव्य है।''[2] वास्तव मे जिस प्रकार धर्म अपने आपको व्यक्त करता है, उसके रूप, आकार प्रकार इतने अधिक और विविध है कि कोई भी एक व्याख्या दे सकना संभव नही है। मानवता के निर्माण में धर्म का योगदान अपेक्षित है। मानव जीवन धर्म के मौलिक सिद्धांतों पर टिका है चाहे हिन्दू धर्मावलम्बी व्यक्ति हो, ईसाई मत का अनुयायी हो या मुस्लिम मतावलम्बी हो। वह जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त धार्मिक सिद्धांतो को न केवल मानता है अपितु उन पर श्रद्धा सुमन भी चढाता हैं।

धर्म मानव के समग्र जीवन– तंत्र को प्रभावित करता है इसलिए धर्म का क्षेत्र व्यापक है। धर्म मानव जीवन के लिए ध्यान साधना की प्रक्रिया मात्र ही नही है। यह जीवन मूल्यों को सुरक्षित रखना भी है। धर्म मानव समाज मे एकता और समानता लाने वाली सर्वोच्च शक्ति है। वैदिक समय मे हमारा धर्म आत्मकल्याण के साथ, समाज एवं विश्व कल्याण की भावना से जुडा हुआ था। धार्मिक आचरण लोगों की आंतरिक पवित्रता एव आत्मशुद्धि के लिए आवश्यक माना गया। हमारे धर्मशास्त्रों में भी धर्म को परोपकारी भावना से जोडा गया। संत गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' मे लिखा है –'परहित सरिस धर्म नहीं भाई'। अर्थात् परोपकार से बढकर कोई दूसरा धर्म नही है। हमारे देश मे धर्म की इसी भावना को अंगीकार किया गया है। हमारे देश मे बौद्ध धर्म, सिक्ख़ धर्म, हिन्दू धर्म आदि में अंहिसा को सर्वोत्तम धर्म घोषित किया गया। भारतेन्दू हरिशचन्द्र के अनुसार 'अहिंसा श्रेष्ठ धर्म है और सभी धर्मो का सार है।''[3] इसलिए हमारा देश एवं हमारी संस्कृति धर्मप्रधान संस्कृति का देश है।

आस्था और विश्वास हमारे धर्म की जड़ें है। हजारो वर्षों के संघर्ष के पश्चात् भी हम अपने उच्चतर एवं शाष्वत् मूल्यों मे विश्वास करते चले आ रहे है। यही विश्वास हमारी धर्मप्राण संस्कृति को युगों युगों से जिन्दा एव जीवंत बनाये रखता है परन्तु धर्म की आड़ मे कुछ चालाक एवं धूर्त लोग अशिक्षित, अंधविश्वासी, धर्मभीरू एवं रूढ़ीवादी लोगो का आर्थिक, मानसिक एवं शारीरिक शोषण करते है। बहुधा धर्म के नाम पर ही प्रगति पर रोक लगा दी जाती है। लोगों को बताया जाता है कि अपनी वर्तमान अवस्था मे ही ख़ुश रहें और ईश्वर ने उन्हें जिस स्थिति मे रखा है। उसी मे प्रसन्न रहना चाहिए। सैकड़ों निर्दोश लोगो की धर्म के नाम पर निर्मम हत्याएँ कर दी जाती है। धर्म के नाम पर ही भारत देश का विभाजन हुआ। धर्म के इस विकृत एव विनाशकारी रूप को देखते हुए मार्क्सवादी विचारधारा के जन्मदाता कार्लमार्क्स ने धर्म को जनता के लिए अफीम के समान कहा है। समकालीन समय मे धर्म का रूप तो अब भी पवित्र है लेकिन स्वार्थी एव धूर्त लोगों ने धर्म की आड़ मे अपने स्वार्थों की पूर्ति करना प्रारम्भ कर दिया है। इसलिए जब कभी धर्म की आलोचना होने लगती है वह वास्तव मे उन स्वार्थी एवं धूर्त लोगो के आचरण की निन्दा है। धर्म मानव की आत्मा है। धर्महीन जीवन का दूसरा नाम सिद्धान्तहीन जीवन है और बिना सिद्धान्त का जीवन बिना पतवार की नौका के समान हैं। प्रेमचन्द जी हिंदी कथा साहित्य में कथा सम्राट तथा उपन्यास सम्राट की उपाधियों से विभूषित हिंदी कहानियों के महान कथशिल्पी तथा कालजयी कथाकार रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन में तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखी हैं जिनमें धार्मिक चेतना की परिचायक कुछ कहानियों को यहाँ विवेचित किया जा रहा है।

'पंच परमेश्वर' के अलगू चौधरी और जुम्मन शेख की गाढ़ी मित्रता के बीच कभी धर्म की दीवार बाधक नहीं बनती। इस कहानी में दिखाया गया है कि भारतीय कृषक कितना ईमानदार है। जब वह न्याय या पंच के आसन पर बैठता है तो वह पुराने बैर भाव को भूलकर सच्चे न्याय पर अड़िग रहता है। यह भारतीय धार्मिक चेतना की अभिव्यक्ति ही तो है।

धर्म के मार्ग पर चलने वाला कभी गलत दिशा में नहीं जा सकता, चाहे वह किसी भी धर्म को मानने वाला क्यों न हो। हिंदुओं में यह आम धारणा है कि उनमें दया भावना अपेक्षाकृत अधिक होती है। 'मुक्तिधन' कहानी में गरीब किसान रहमान मुसलमान होकर भी गाय के प्रति उसी भावना का परिचय देता है जिस पर आम हिंदुओं

में अहम् भाव है। प्रेमचंद जी का मानना है कि हृदयगत भावनाओं के धरातल पर हिंदू हो या मुसलमान सभी समान हैं। धर्म के आधार पर मनुष्य की मनुष्यता नहीं आंकी जा सकती। 'क्षमा' शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द जी ने यही दिखाया है। कहानी का मुसलमान पात्र 'जमाल' मात्र इस्लाम की तौहीनी पर ही ईसाई धर्मावलम्बी 'दाउद' के प्राण लेने पर उतारु हो जाता है, पर उसी का पिता शेख हसन अपनी शरण में आए दाउद को यह जानकर भी क्षमा कर देता है कि यही ईसाई युवक उसके एकलौते पुत्र 'जमाल' का हत्यारा है। वह कहता है ''दाउद मैंने तुम्हें माफ किया। मैं जानता हूँ मुसलमानों के हाथ ईसाईयों को बहुत तकलीफें पहुँची हैं। मुसलमानों ने उन पर बड़े अत्याचार किए हैं, उनकी स्वाधीनता हर ली है। लेकिन यह इस्लाम का नहीं मुसलमानों का कसूर है। हमारे पाक नवी ने यह शिक्षा नहीं दी थी जिस पर आज हम चल रहे हैं।''[4]

एक अन्य कहानी 'नमक का दारोगा' में रिश्वत न लेने की बात कही गई है। रिश्वत लेना धर्म विरुद्ध है। इसी प्रकार 'आत्माराम' कहानी में महादेव सुनार का अन्त में हृदय परिवर्तन हो जाता है, जब उसे यह अहसास होता है कि धन ही सब बुराइयों की जड़ है। बाह्य स्तर पर 'शुद्धिकरण' की पवित्र चादर अपने भीतरी रुप में कितनी मैली है, इसे प्रेमचंद ने दिखाया है अपने 'मंत्र' शीर्षक कहानी के माध्यम से। इस कहानी में उन्होंने मुसलमानों के 'तबलीग' एवं हिंदूओं के 'शुद्धि आंदोलन' की व्यर्थता दिखाई है। अपनी अंतरात्मा को शुद्ध किए बिना औरों को शुद्ध करने का दंभ भरने वाले पंडित जी स्वयं कह उठते हैं कि – ''मैं भला इन्हें क्या शुद्ध करुँगा, पहले अपने को तो शुद्ध कर लूँ। ऐसी निर्मल, पवित्र आत्माओं को शुद्धि के ढोंग से अपमानित नही कर सकता।''[5] 'प्रेरणा' कहानी में भारतीय धार्मिक चेतना का वह पक्ष है जिसमें माना गया है कि गुरु ईश्वर के समान है। 'दंड़', 'नरक का मार्ग', 'दीक्षा' सभी में कोई न कोई धार्मिक चेतना उजागर हुई है। केवल इन्हीं में नहीं अन्य कहानियों में भी धार्मिक चेतना का कोई न कोई पक्ष मुखरित हुआ है। धर्म के संबंध में प्रेमचन्द की मान्यता है कि वह ईश्वर के प्रति मनुष्य का व्यक्तिगत संबंध है। उसके बीच देश, जाति और राष्ट्र किसी को भी दखल देने का अधिकार नहीं है। प्रेमचन्द जी ने धर्म के शाश्वत सत्य को अपनी सभी कहानियों और अपने संपूर्ण साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है कि धर्म ही निश्चित है– धर्मः एकः हि निश्चलः।

संदर्भ

1. मनुस्मृतिः टीकाकार– पंडित श्री हरगोविंद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी–1 द्वितीय संस्करण संवत् 2021, अध्याय–6, श्लोक संख्या 92, पृ0 315
2. हमारी परम्परा, सं0 वियोगी हरि, पृ0 327
3. भारतेन्दु ग्रन्थावली, (दूसरा खण्ड) पृ0 692
4. प्रेमचन्द रचनावली, (खण्ड–13) सं0 राम आनन्द, पृ0 53
5. वहीं पृ0 271